विक्रम संवत-२०३५, अषाढ़ कृष्ण-१५, रविवार, तारीख १०-८-१९८०
वचनामृत-२१, ३० प्रवचन-३

चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना अर्थात् राग-द्वेष में से नहीं उदित हुई भावना—ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है। यदि नहीं फले तो जगत को—चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाए। परन्तु ऐसा होता ही नहीं। चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है—ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। यह अनन्त तीर्थंकरों की कही हुई बात है॥ २१॥

२१। **चैतन्य को चैतन्य में से...** चैतन्य भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु वस्तु, अन्तर में अनंत गुण बसे हैं, ऐसी यह चीज़-वस्तु है। उसको यहाँ चैतन्य कहा है। चैतन्य में से **चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना...** अन्तर चैतन्यस्वरूप, चैतन्यस्वरूप की परिणत अन्दर भावना वह निर्मल (है)। जैसा चेतन है, वैसा चैतन्य गुण है, ऐसी चैतन्य की परिणति उत्पन्न हुई। ऐसी परिणति-भावना **राग-द्वेष में से नहीं उदित हुई भावना...** यह थोड़ा सूक्ष्म पड़ेगा। जिसे अन्तर राग-द्वेष के बिना चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसकी चैतन्य में से चैतन्य की भावना परिणमित हुई। आहाहा! वह भावना, ऐसी यथार्थ भावना है। बाह्य कोई भी प्रपंच या विकल्प की वहाँ अपेक्षा नहीं है। ऐसी भावना **यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है।** थोड़ी सूक्ष्म बात आयेगी।

चैतन्य में से चैतन्य की भावना जागृत हुई और करना भी वही है। वह जो चैतन्य की भावना परिणमित हुई, वह पूर्ण होकर ही रहेगी। उसका फल पूर्ण ही आयेगा। **यदि नहीं फले तो जगत को—चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े...** थोड़ी सूक्ष्म बात है। क्या कहते हैं? चैतन्यस्वरूप भगवान, उसकी चैतन्य भावना राग और द्वेष बिना के, वह भावना फले नहीं, जगत में यदि वह भावना न फले... आहाहा! तो जगत को चौदह ब्रह्माण्ड को

शून्य होना पड़े। क्या कहते हैं ? आहा.. ! वास्तविक जिसे अन्दर चैतन्य की भावना जागृत हुई है, उसे यदि चैतन्य पूर्ण प्राप्त न हो तो जगत को शून्य होना पड़े। अर्थात् उस भावना का फल नहीं आये तो वह द्रव्य ही नहीं है। सूक्ष्म बात है, भाई !

चैतन्य की भावना न फले तो वह चैतन्य पूर्ण नहीं है अर्थात् द्रव्य ही नहीं है। द्रव्य नहीं है तो जगत के द्रव्य का नाश होगा। थोड़ी सूक्ष्म बात है। आहाहा ! अपने चैतन्य की भावना यदि नहीं फले तो जगत को–चौदह ब्रह्माण्ड को (शून्य होना पड़े)। अपनी भावना अन्दर से हुई और उसका परिणाम पूर्ण न हो तो जगत को शून्य होना पड़े। क्योंकि द्रव्य ही नहीं रहता। चैतन्य की भावना है, उसका फल द्रव्य पूर्ण, पूर्ण द्रव्य का फल है। यदि वह भावना न फले तो वह पूर्ण द्रव्य (परिणमन में) आये नहीं। और पूर्ण द्रव्य न हो तो जगत शून्य हो जाए। थोड़ी अलग प्रकार की बात है। आहाहा !

अन्तर में भगवान चैतन्यमूर्ति प्रभु, चैतन्य की भावना अन्दर त्रिकाली, वह भावना न फले तो वह द्रव्य ही नहीं रहता। अर्थात् भावना हुई और द्रव्य पूर्ण नहीं होता। पूर्ण नहीं हो तो जगत को शून्य होना पड़े। जगत के सभी प्राणी या जीव, उसकी भावना के फलस्वरूप पूर्ण नहीं आवे तो उस तत्त्व को नाश होना पड़े। थोड़ी सूक्ष्म बात है। पण्डितजी ! सूक्ष्म बात है।

बहिन के वचन हैं, अनुभूति में से निकले हैं। अन्तर आनन्द के अनुभव में से बात आयी है, सूक्ष्म बात है। बहुत सादी भाषा है। परन्तु बात वह कहते हैं कि यह प्रभु जो अन्दर है, नित्यानन्द नाथ, नित्यानन्द के नाथ की भावना; राग और द्वेष बिना की, वह भावना यदि न फले तो द्रव्य ही नहीं रहता। द्रव्य नहीं रहता, इसलिए जगत ही शून्य हो जाए। आहाहा ! समझ में आया ?

वह भावना फलती ही है। पहले तो अस्ति से बात की है। भगवान आत्मा अन्दर चैतन्य को जागृत करके, खोजकर श्रद्धा की, जिसने अन्दर रागरहित भेदज्ञान प्रगट किया, वह पूर्णता प्राप्त न करे तो वह द्रव्य ही नहीं रह सकता। द्रव्य न रहे तो सब द्रव्य का नाश हो जाए। प्रत्येक द्रव्य की भावना और पर्याय अन्दर, उससे परिणति की प्राप्ति न हो तो वह वस्तु ही न रहे। आहा.. ! थोड़ी सूक्ष्म बात है। बहिन के अन्दर के वचन हैं। आहाहा !

पंचम काल के प्राणी को भी, वस्तु है उसे पंचम काल या चौथा काल नहीं है। क्योंकि यह जो शास्त्र कहे वह पंचम काल के साधु ने और पंचम काल के जीव के लिये कहा है। चौथे काल के प्राणी को नहीं कहा है। आहाहा! यहाँ भी कोई जीव ऐसे निकले... आहाहा! भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु भाव वस्तु अस्तिरूप (है), उसकी सत्ता का स्वीकार होकर जो मोक्षमार्ग की भावना प्रगट हुई, उस भावना का फल मोक्ष न आवे तो जगत को शून्य होना पड़े। द्रव्य रह सके नहीं। आत्मा की भावना का उतना जोर आवे कि यह भावना फले ही, केवलज्ञान लेकर रहे। आहाहा! यह बात आफ्रीका में ली थी। आहाहा!

चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े'.. एक बात। अर्थात् जो द्रव्य है, उसकी भावना यथार्थ और और वह द्रव्य फले नहीं तो द्रव्य का नाश हो जाए। तो जगत शून्य हो जाए। आहाहा! **अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाए।** पहले पूरे जगत की समुच्चय की बात की। द्रव्य की भावना है और द्रव्य फले नहीं तो उस द्रव्य का नाश हो जाए। क्योंकि भावना का फल जो द्रव्य पूर्ण पर्याय, वह नहीं आये तो वह भावना निष्फल गई। भावना निष्फल गई तो उसका फल भी नहीं मिलता, इसलिए उस द्रव्य का नाश हुआ। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म पड़े ऐसी बात है।

वह क्या? अपनी भावना अपने को न फले, उसमें जगत को (शून्य होना पड़े)? बापू! प्रभु! उसमें वह बात है कि जो द्रव्य है, जो सत्ता स्वतन्त्र है, उस सत्ता की भावना करने पर वह सत्ता पूर्णपने पर्यायपने न हो तो वह सत्ता ही नहीं रहती। वह सत्ता नहीं रहने से जगत के पदार्थ सत्तारूप है, वह नहीं रह सकेंगे। आहाहा! जोर अन्दर का (है)। अप्रतिहत भावना का यह फल है। जो यह भावना हुई तो आत्मा पूर्ण होकर ही रहेगा। उसमें विघ्न आनेवाला नहीं, भले हम पंचम काल में आये। आहाहा! और वह भी शास्त्र में कहा है। (समयसार) ३८वीं गाथा में।

अबुद्ध था-अप्रतिबुद्ध था, उसे समझाया। ३८वीं गाथा। वह समझा और ऐसे समझा, अप्रतिबुद्ध समझा। कोई कहता है कि यह समयसार मुनि के लिये है। ३८वीं गाथा में अप्रतिबुद्ध को बात कहते हैं। आहा..! वह अप्रतिबुद्ध समझा, उसे गुरु ने बारम्बार समझाया, समझकर उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ। और कहते हैं, उसमें टीका में पाठ है कि हमें जो यह प्राप्त हुआ है, उससे मैं च्युत नहीं होऊँगा। पंचम काल का प्राणी

है और कहनेवाले पंचम काल के गुरु हैं, इसलिए हमारी दशा नीचे गिर जाएगी, ऐसा है नहीं। ३८वीं गाथा में है। वहाँ तो वहाँ तक कहा है, हम सम्यग्दर्शन-ज्ञान से च्युत होंगे ही नहीं। शंका नहीं होती। आहाहा! अन्दर से वह जोर आना चाहिए। वह कोई बाह्य प्रवृत्ति और क्रिया से प्राप्त नहीं होता। आहाहा! अन्दर का जोर, चैतन्यप्रभु पूर्ण भगवान पूर्णानन्द का नाथ चैतन्य रत्नाकर, चैतन्यरत्न से भरा आकर अर्थात् समुद्र, चैतन्य रत्नाकर भगवान, उसकी जिसे भावना हुई। पुण्य और पाप के राग-द्वेष के भाव बिना की भावना हुई। आहाहा! पुण्य और पाप की विकारी भावना बिना चैतन्य की भावना हुई, वह चैतन्य फले ही। वह केवलज्ञान प्राप्त करेगा ही। और केवलज्ञान एवं पूर्णता न हो तो वह भावना निष्फल जाए और भावना का फल निष्फल जाए तो द्रव्य का नाश हो जाए। आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म है। यह तो अन्दर के जोर की बात है। आहाहा!

भाववान आत्मा त्रिकाली भाव भगवानस्वरूप, सब भगवानस्वरूप ही है। आत्मा एक समय की पर्याय के अलावा भगवानस्वरूप ही है। सब आत्मा, निगोद से लेकर सब द्रव्य जो है, वह तो त्रिकाली निरावरण ही है। अखण्ड है, अविनाशी है। ऐसी चीज़ की अन्तर्दृष्टि हुई, ऐसी चीज़ की अन्तर भावना हुई और आत्मा प्राप्त न हो, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। प्राप्त नहीं हो रहा है तो उसका कारण क्या? कारण यह है कि जितनी योग्यता उसे पकड़ने की करने की चाहिए, उतनी योग्यता का अभाव है। आहाहा!

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु अनन्त गुण का समुद्र वह तो है, अनन्त गुणसागर है। उस चीज़ को पकड़ने में आये, भावना हो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो और केवलज्ञान न हो और पूर्ण द्रव्य पर्यायपने परिणमे नहीं, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। पंचम काल के प्राणी की बात है। ३८वीं गाथा में वह लिया है। अप्रतिबुद्ध था, उसने समकित प्राप्त किया, वह कहता है, मेरा समकित अब गिरेगा नहीं। ऐसा पाठ है। ३८वीं गाथा। भाई! अन्तर की चीज़ अलग है। बाह्य आचरण की क्रिया, वह सब बातें बाहर की अलग है। आहा..! दया, दान, व्रत, भक्ति भी जड़ है। आहाहा!

मुमुक्षु :- हिन्दी में।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हिन्दी में आया नहीं? जड़ है। दया, दान, भक्ति आदि परिणाम (जड़ हैं)। क्योंकि उसमें चेतन का अभाव है। चेतन का अभाव है तो वह अचेतन ही है।

और अचेतन की जिसे प्रीति है, उसको चेतन की प्रीति नहीं है और जिसको चेतन की प्रीति हुई, उसको पुण्य-पाप राग अचेतन है, उसकी प्रीति रहती नहीं। जिसको आत्मा का रस चढ़ा, उसका राग का रस नाश हो जाता है। आहाहा! और राग का रस यदि रहे तो आत्मा का शान्ति का रस नाश हो जाता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **यदि भावना नहीं फले तो जगत को—चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े...** आहाहा! अपना जोर है। अपनी पर्याय की भावना से पर्यायवान पूर्ण की प्राप्ति न हो तो दुनिया नहीं रह सकती। क्योंकि भावना का फल द्रव्य, वह द्रव्य नहीं आये तो जगत में द्रव्य ही न रहे। आहाहा! सूक्ष्म है, प्रभु! बात थोड़ी अन्दर की है। अनुभव की बात है। आहाहा! एक बात (हुई)।

अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाए। जिसकी भावना आत्मा ने की, आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान, उसका आनन्द आया और पूर्ण प्राप्त न हो तो द्रव्य का नाश हो जाए। साधक का साध्य पूर्ण प्राप्त होगा ही। न हो तो साधक का नाश होने से साध्य का नाश होगा। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! आत्मा के बल की बात अन्दर है। यहाँ पंचम काल का अवरोध नहीं है। क्योंकि समयसार, प्रवचनसार, नियमसार आदि कहनेवाले तो पंचम काल के साधु थे और पंचम काल के श्रोता को समझाते थे। ऐसा नहीं है कि यह बात चौथे काल की है और पहले काल की है और ऊँची है। काल आदि कुछ आत्मा को अवरोध नहीं करता। आत्मा को कोई अवरोध नहीं है। ऐसा भगवान अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, उसकी जिसको यथार्थ भावना हुई, वह फले ही फले, परमात्मा होकर ही रहेगा। छुटको को क्या कहते हैं। परमात्मा थये (छुटको)। (छुटकारा)। हमारी भाषा छुटको है। परमात्मा हो जाए। अवश्य फलेगी। आहा..!

परन्तु ऐसा होता ही नहीं। आहाहा! पहली यह बात की। फिर (कहते हैं), ऐसा होता ही नहीं। बहिन रात्रि में थोड़ा बोले होंगे, बहनों ने लिखा लिया होगा। यह लिख लिया है। अनुभूति में से लिखा गया है। आत्मा का सम्यग्दर्शन और अनुभूति में से यह सब वाणी आई है। आहाहा! **ऐसा होता ही नहीं। चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है...** क्या कहते हैं? चैतन्य का जो निर्मल परिणाम, उससे पूर्ण हो, ऐसा द्रव्य का स्वभाव ही है। कुदरत उससे बँधी हुई है कि अपना परिणाम जो चैतन्य शुद्ध सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि

शुद्ध परिणाम हुआ तो उसे पूर्ण परमात्मा होगा ही, ऐसा कुदरत अर्थात् द्रव्य का स्वभाव ऐसा है। वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है। आहाहा!

चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है... कुदरत का अर्थ वह-द्रव्य का स्वभाव ही ऐसा है। द्रव्य का स्वभाव रहे नहीं। अपनी भावना हो और भाव न आये तो वस्तु रह सकती नहीं। कोई ऐसा कहते हैं कि, हम मेहनत तो बहुत करते हैं, परन्तु समकित क्यों नहीं होता? उसकी बात झूठी है। जितने प्रमाण में अन्तर्मुख में प्रयत्न चाहिए, उतने प्रयत्न की कमी के कारण आत्मा हाथ नहीं आता। और कहे कि हम प्रयत्न बहुत करते हैं, परन्तु हाथ में नहीं आता, वह बात झूठी है। पण्डितजी! आहा..! हम तो बहुत मेहनत करते हैं, परन्तु पता नहीं लगता। उसका अर्थ ऐसा हुआ कि साधन तो बहुत करते हैं; साध्य प्राप्त नहीं होता। ऐसी बात कभी नहीं होती। आहाहा! जितने प्रमाण में राग-द्वेष रहित चैतन्य की सूक्ष्म परिणति स्वयं को पकड़ने को जितनी चाहिए, उतनी न हो और पकड़ में आवे, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। और उतनी सूक्ष्म पर्याय प्रगट हुई हो और पकड़ में न आवे, ऐसा भी कभी नहीं बनता। समझ में आया? अलग बात है, बापू!

मुमुक्षु :- काललब्धि के बिना पुरुषार्थ क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री :- काललब्धि कोई वस्तु नहीं है। टोडरमलजी ने ऐसा कहा है। मैं तो ऐसा कहता हूँ, बहुत साल से (संवत्) १९७१ की वर्ष से। ७१ की वर्ष से। काललब्धि की धारणा करनी है या उसका ज्ञान करना है? क्या कहा, समझ में आया? काललब्धि को धारणा में धारना है या काललब्धि का ज्ञान करना है? जब काललब्धि का ज्ञान होगा, द्रव्य स्वभाव का ज्ञान हुआ तो काललब्धि का ज्ञान होता ही है। टोडरमलजी ने लिखा है। काललब्धि और भवितव्यता कोई वस्तु नहीं है। ऐसा लिखा है। वस्तु है, अकेली नहीं है। अकेली काललब्धि नहीं है।

काललब्धि का ज्ञान किसको अन्दर होता है? काललब्धि, काललब्धि शब्द का रटन कर ले, उसका क्या मतलब है? उसकी प्रतीति किसको होती है? कि अपने द्रव्य की ओर जिसकी दृष्टि हो और चैतन्य का अनुभव (हुआ हो)। काल, पुरुषार्थ, स्वभाव, निमित्त का अभाव सब आते हैं। पाँचों समवाय एक समय में होते हैं। आहाहा! कठिन बात

है। पाँच समवाय है न? पाँचों समवाय। उस समय पुरुषार्थ द्रव्य पर आया, पर्याय द्रव्य पर ढल गई, झुकी, पाँचों समवाय होंगे। न हो, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। वह बात तो यहाँ चलती है। आहाहा!

मुमुक्षु :- कुदरत बँधी हुई है, ऐसा क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री :- द्रव्य का स्वभाव ऐसा है। भावना हुई और (फल न आये) तो द्रव्य का नाश हो जाए। इसलिए कुदरत का नाश हो जाए। आहा..! सूक्ष्म बात है, भाई! काललब्धि की बात तो पहले से बहुत कहते थे। मैने कहा था न? १९७१ के वर्ष में, बारम्बार ऐसा कहते थे, केवलज्ञानी ने देखा होगा ऐसा होगा। केवलज्ञानी ने देखा होगा वैसा होगा, अपने क्या पुरुषार्थ कर सके? अभी यह क्रमबद्ध का आया है कि क्रमबद्ध में जब होगा तब होगा, हम क्या पुरुषार्थ करें? आहाहा! क्रमबद्ध की बात यहाँ से निकली है न। क्रमबद्ध कहाँ था?

द्रव्य की प्रत्येक समय में जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी। क्रमसर होगी। आगे-पीछे इन्द्र, जिनेन्द्र बदल सके नहीं। जो द्रव्य की जो समय की पर्याय, उस समय की वही पर्याय, दूसरे समय की दूसरी, तीसरे समय की तीसरी (होगी)। उस पर्याय को बदलने में इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र समर्थ नहीं है। यह बात और एक यह बात-दोनों बात नहीं थी। समयसार की तीसरी गाथा। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं। एक आत्मा परमाणु को छूता नहीं। परमाणु, परमाणु को छूता नहीं। आहाहा! यह परमाणु इस परमाणु में है। एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं। प्रत्येक का स्वचतुष्टय अपने में अपने कारण से परिणमता है। पर की अपेक्षा उसमें है नहीं। आहाहा! कठिन बात है।

मुमुक्षु :- इसका विश्वास कैसे हो? परमाणु परमाणु को स्पर्शता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- बिल्कुल छूता नहीं। एक परमाणु है (उसे) दूसरा परमाणु (स्पर्शता नहीं)। तीसरी गाथा में ऐसा कहते हैं, समयसार। एक द्रव्य अपने धर्म को चुम्बता है। देखना है? हिन्दी नहीं होगा। गुजराती होगा। **सब पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहनेवाले...** संस्कृत टीका है। संस्कृत टीका का है। समयसार। **सर्व पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहनेवाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन**

करते हैं... सर्व पदार्थ अपने गुण-पर्याय को छूते हैं। परमाणु या आत्मा, सर्व अपनी पर्याय को छूते हैं। **स्पर्श करते हैं-तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते,..** आहाहा! यह बात गजब है! वीतराग के सिवाय यह बात हो नहीं सकती। एक रजकण दूसरे रजकण को छूता नहीं। आहाहा! इस अंगुली में अनन्त परमाणु हैं। एक-एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं। अपने परमाणु में अपनी परिणति अपने से अपने में अपने कारण से है। आहाहा!

मुमुक्षु :- यह तो निश्चय का कथन हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री :- निश्चय अर्थात् सत्य। व्यवहार अर्थात् उपचार।

मुमुक्षु :- इसमें यह भी लिखा हुआ है कि एक-दूसरे का उपकार करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह झूठी बात है। वह कहा था। चौदह ब्रह्माण्ड लिखते हैं, फिर नीचे लिखते हैं, परस्पर उपग्रहो। ऐसा लिखते हैं। उसका अर्थ सर्वार्थसिद्ध में ऐसा किया है कि उपग्रह का अर्थ निमित्त है। कोई दूसरे को उपकार कर सके, ऐसा है ही नहीं। निमित्त (है)। ऐसी बात। एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य उपग्रह-उपकार करे, ऐसा तीन काल में है नहीं। उपकार का अर्थ वहाँ लिया है कि निमित्त की उपस्थिति, उसका नाम उपकार कहने में आया है। निमित्त, हों! निमित्त जगत में तो होता है। परन्तु जब-जब जिस द्रव्य की पर्याय होनेवाली है, वह अपने से ही होती है। निमित्तमात्र दूसरी चीज़ भले हो। निमित्त को छूता नहीं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी छूता नहीं। आहाहा! एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं। आत्मा कर्म को छूता नहीं। आहाहा! बात सूक्ष्म है, भाई!

यहाँ तो (संवत) १९७१ से चल रहा है। क्रमबद्ध, क्रमबद्ध चलती है। एक के बाद एक पर्याय चले, उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है। क्रमबद्ध। क्रमनियमित शब्द है। ३०८ गाथा। क्रमनियमित अर्थात् सब बराबर। जिस समय जो पर्याय होगी, वह होगी; बाद में होगी, आगे-पीछे होगी - ऐसा है ही नहीं। ऐसा वहाँ ३०८ गाथा में है। ऐसा प्रश्न उठा था कि केवलज्ञानी ने देखा वैसा होगा। अपने क्या पुरुषार्थ करें? यह १९७१-७२ की बात है। मैंने इतना कहा कि एक समय, ज्ञान में एक समय में तीन काल-तीन लोक जानता है, अपनी पर्याय द्रव्य-गुण को भी जानती है, वह पर्याय लोकालोक को जानती है, वह पर्याय

अपनी बाहर अनन्ती पर्याय प्रगट है, उसको जानती है। ऐसी एक समय की पर्याय की सत्ता का स्वीकार करनेवाला, द्रव्य पर दृष्टि हुये बिना स्वीकार नहीं होता। आहाहा! एक समय की केवलज्ञान की एक पर्याय में पूरी दुनिया है। क्योंकि उस पर्याय में लोकालोक जानने में आता है, द्रव्य-गुण जानने में आते हैं। एक ही पर्याय, दुनिया में एक पर्याय वस्तु, उसमें पूरे तीन काल-तीन लोक जानने में आते हैं। ऐसी एक समय की पर्याय की सत्ता, इस प्रकार अन्दर विचार करके, नमन करके अन्दर... आहाहा! भगवन्त आत्मा की ओर झुककर निर्णय करे, उसको सम्यग्दर्शन हुए बिना रहे नहीं। आहाहा! समझ में आया? बड़ी बात हुई। सत्ता का स्वीकार (है)? केवलज्ञान, केवलज्ञान सब बोलते हैं, परन्तु केवलज्ञान कहना किसको? केवलज्ञानी ने देखा वैसा होगा। परन्तु तुमको अभी केवलज्ञान की श्रद्धा है या नहीं? बाद में देखा होगा वैसा होगा। केवलज्ञान की सत्ता का स्वीकार करेगा, उसकी दृष्टि ज्ञान पर जाएगी।

अपना स्वभाव चैतन्य आनन्द प्रभु, उसकी दृष्टि जब केवलज्ञान की सत्ता का स्वीकार करेगी, वहाँ अपनी सत्ता का स्वीकार किये बिना (उसकी सत्ता का स्वीकार होता नहीं)। पर्याय का निर्णय पर्याय से होता नहीं। पर्याय का निर्णय द्रव्य के आश्रय से होता है। सूक्ष्म लगे, भगवान! मार्ग यह है। तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान कहते हैं। आहाहा! वह बात है। किंचित्मात्र फेरफार नहीं। आहाहा!

एक समय की सत्ता! कब बात है? इस दुनिया में एक समय की पर्याय की सत्ता ऐसी एक ही है। एक पर्याय केवलज्ञान की एक ही है। एक समय की एक पर्याय में लोकालोक, द्रव्य-गुण-पर्याय, द्रव्य-गुण, अपनी अनन्ती वर्तमान प्रगट पर्याय सब जानने की ताकत एक समय में है। आहाहा! एक समय की पर्याय की सत्ता का स्वीकार करने जाए, उसकी पर्याय पर दृष्टि नहीं रहेगी। आहाहा! उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाएगी। क्योंकि पर्याय में पर्याय के आश्रय से पर्याय का निर्णय नहीं होता। आहाहा! सूक्ष्म है, भगवान! पर्याय का निर्णय द्रव्य के आश्रय से होता है। आहाहा! अन्दर तत्त्व की मूल बात कम हो गयी और फेरफार हो गया बहुत।

एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं। एक आत्मा एक-दूसरे को, कर्म को छूता नहीं। आहाहा! और प्रत्येक परमाणु और आत्मा में क्रमसर पर्याय होगी, आगे-पीछे नहीं।

परन्तु उस क्रमसर पर्याय का निर्णय करनेवाले की दृष्टि द्रव्य पर जाएगी। द्रव्य पर जाएगी तो उसको समकित ही होगा। आहाहा!

ऐसे यहाँ जो बहिन ने कहा है, वह जोरवाला है। आहाहा! अन्तर स्वभाव की भावना, स्वभाववान प्रभु, उसकी भावना उसका फल न आवे तो उस वस्तु का नाश होगा। उस वस्तु का अस्तित्व नहीं रहेगा। उसका नहीं रहेगा तो पूरे जगत का अस्तित्व नहीं रहेगा। अथवा उस द्रव्य का ही नाश होगा। क्योंकि द्रव्य की जो पूर्ण शक्ति है, उसकी प्रतीति और अनुभव में भावना आयी, उस भावना का फल पूर्ण द्रव्य न आये तो उस द्रव्य का नाश होगा। सूक्ष्म बात है, भाई! यह आया है, इसलिए थोड़ा कहते हैं। नहीं तो इतनी सूक्ष्म बात नहीं करते हैं। आहाहा!

ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। स्वभाव की भावना जो चैतन्य की की; चैतन्य द्रव्य, उसकी भावना। अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी भावना अन्दर हुई, वह निर्विकल्प हुई। वह निर्विकल्प भावना रागरहित हुई। रागरहित हुई, उस भावना से केवलज्ञान अर्थात् पूर्ण दशा प्राप्त होगी, होगी और होगी ही। न हो तो द्रव्य का नाश हो जाएगा। द्रव्य की स्थिति ऐसी है नहीं। द्रव्य का साधन जिसने कहा, उसका साध्य आकर ही छुटकारा है। आहाहा! समयसार में ३८ गाथा में यह लिया है। अप्रतिबुद्ध समझा तो कहता है, अब मुझे छूटेगा नहीं। हमारी श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव से छूटेगा नहीं। पाठ है। संस्कृत टीका है। ९२वीं गाथा में ऐसा है, प्रवचनसार। हमने जो मार्ग अन्दर से प्राप्त किया है, उस मार्ग से कभी छूटेंगे नहीं, च्युत नहीं होंगे। भले ही हम अकेले हों। आहाहा! पंचम काल के श्रोता को भी इतना जोर आता है। धर्म कोई साधारण है? बापू! लोग साधारण माने कि दया पाली, व्रत लिये, प्रतिमा ले ली, इसलिए हो गया धर्म। बापू! धर्म कठिन है।

सम्यग्दर्शन.. आहाहा! वह जब होता है, तब यह सब ज्ञान होता है। यह हुआ तो परमात्मा होगा ही होगा। न हो तो द्रव्य का नाश होगा। द्रव्य का स्वभाव ऐसा नहीं है। कुदरत में द्रव्य का स्वभाव ऐसा है कि साधकभाव हुआ तो साध्य प्रगट होगा ही। यहाँ ऐसी बात ली है। च्युत हो जाएगा, ऐसी बात यहाँ नहीं ली है। आहाहा! ग्यारहवें गुणस्थान से च्युत होता है न? वह बात यहाँ नहीं ली है। यह बात ली है।

यहाँ भी वह लिया, **ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। यह अनन्त तीर्थंकरों की कही**

हुई बात है। आहाहा! थोड़ी सूक्ष्म बात आ गयी। **यह अनन्त तीर्थंकरों की कही हुई बात है।** चैतन्य के परिणाम में चैतन्य की परिपूर्णता न आये, ऐसा अनन्त तीर्थंकरों ने नहीं कहा है। अनन्त तीर्थंकरों ने कहा है, भगवान चैतन्यस्वरूप पुण्य और पाप के विकल्प से रहित, उसका अन्दर में अनुभव हो, दृष्टि हो, भावना हो। निर्विकल्पदशा हो और उसे निर्विकल्प परमात्मपद-साध्य प्राप्त न हो, (ऐसा) तीन काल में बनता नहीं। समझ में आया? २१वाँ बोल (पूरा) हुआ। ३०। किसी ने लिखा है। इसमें से पढ़ने के लिये किसी ने लिखा है।

जब बीज बोते हैं, तब प्रगटरूप से कुछ नहीं दिखता, तथापि विश्वास है कि 'इस बीज में से वृक्ष उगेगा, उसमें से डालें-पत्ते-फलादि आएँगे', पश्चात् उसका विचार नहीं आता; उसी प्रकार मूल शक्तिरूप द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से निर्मल पर्याय प्रगट होती है; द्रव्य में प्रगटरूप से कुछ दिखाई नहीं देता, इसलिए विश्वास बिना 'क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है, परन्तु द्रव्यस्वभाव का विश्वास करने से निर्मलता प्रगट होने लगती है॥ ३०॥

३०वाँ बोल। **जब बीज बोते हैं,...** ३०वाँ बोल है। **जब बीज बोते हैं, तब प्रगटरूप से कुछ नहीं दिखता,...** बीज बोते हैं तो तुरन्त (फल) आ जाता है? आहाहा! **तथापि विश्वास है कि 'इस बीज में से वृक्ष उगेगा, ही...'** इस बीज में से वृक्ष उगेगा ही। उगेगा नहीं, उगेगा ही। आहाहा! अन्तर में आत्मा का बीज बोया,.. आहा..! वह उगेगा ही। केवलज्ञान आये बिना रहेगा नहीं। षट्खण्डागम में ऐसा एक बोल है कि, जब अन्दर से मतिज्ञान हुआ, स्वभाव के अनुभव में से जब मतिज्ञान हुआ तो मतिज्ञान ऐसा कहता है, मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है, ऐसा पाठ है। बुलाता है, ऐसा पाठ है। संस्कृत। षट्खण्डागम। मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। यह क्या? उसका अर्थ यह है कि जो दूज उगी है, वह पूर्णिमा होगी ही। तेरहवें दिन पूर्णिमा होगी ही। उसमें निःशंकता है, कोई शंका का स्थान नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु :- दूज का चन्द्रमा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- वैसे यह भगवान सम्यग्दर्शनरूपी दूज उगी, केवलज्ञान फले

बिना रहेगा नहीं। आहाहा! क्या हो? मूल चीज़ पर (दृष्टि नहीं)। चैतन्यमूर्ति निर्विकल्प वस्तु त्रिकाल निरावरण। वस्तु है, वह तो त्रिकाल निरावरण है, अखण्ड है, एक है। जयसेनाचार्य की टीका। जयसेनाचार्य की टीका का पाठ (है)। त्रिकाल निरावरण। पाठ है, इसमें होगा। जयसेनाचार्य की टीका है। आहा..! लम्बी बात है। क्या कहा? सकल निरावरण। देखो!

पुनः स्पष्ट करने में आता है। विवक्षित एकदेश शुद्धनयाश्रित, विवक्षित एकदेश शुद्धनयाश्रित यह भावना जो कहना चाहते हैं, शुद्धिरूप परिणति निर्विकल्प स्वसंवेदनलक्षण क्षायोपशमिक ज्ञानरूप होने से यद्यपि एकदेश व्यक्तरूप है, तो भी ध्याता पुरुष यह भाता है कि जो सकलनिरावरण... संस्कृत टीका है। सकल निरावरण प्रभु अन्दर है। आहाहा! सकलनिरावरण अखण्ड एक। गुणभेद नहीं। आहाहा! सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्षप्रतिभासमय। संस्कृत में है, समयसार। समझ में आया? प्रत्यक्षप्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण। शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ। आहाहा! समयसार की जयसेनाचार्य की टीका में है। जयसेनाचार्य की टीका में है। शब्दशः लिख लिया है। आहाहा! क्या कहते हैं? देखो!

इस प्रकार सिद्धान्त में कहा है, निष्क्रिय शुद्ध पारिणामिक। शुद्ध पारिणामिकभाव निष्क्रिय है। शुद्ध पारिणामिकभाव सक्रिय नहीं है, परिणमन नहीं है। पर्याय में परिणमन है। निष्क्रिय का क्या अर्थ है? क्रिया-रागादि परिणति उसरूप नहीं। मोक्ष के कारणभूत क्रिया शुद्धभावना परिणति, उसरूप भी नहीं। सूक्ष्म बात है, प्रभु! द्रव्यरूप जो वस्तु है, वह त्रिकाल निरावरण है, अखण्ड है, एक है। मोक्ष के कारणरूप भी नहीं। मोक्ष और मोक्ष का कारण, दो रूप द्रव्य नहीं है। ऐसा पाठ है। आहाहा! देखो! मोक्ष के कारणभूत क्रिया शुद्धभाव परिणति उसरूप भी नहीं है। और ऐसा जानने में आता है कि शुद्ध पारिणामिक ध्येय (है), ध्यानरूप नहीं है। आहाहा! ध्यान विनश्वर है। पाठ है। ध्यान विनश्वर है। पाठ है। संस्कृत टीका है। ध्यान विनश्वर है, इसलिए ध्यान का ध्यान नहीं। आहाहा! गजब बात है, भाई! ध्येय का ध्यान। आहाहा!

योगीन्द्रदेव ने भी कहा है। योगीन्द्रदेव ने (परमात्मप्रकाश में) कहा है।

ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थें जोइया जिणवरु एउँ भणेइ॥६८॥

यह श्लोक है। हे योगी! अन्तरस्वरूप में जुड़ान करनेवाले को योगी कहते हैं। परमार्थ से जीव उत्पन्न नहीं होता। परमार्थ से जीव उत्पाद नहीं करता। उत्पाद-व्यय से भिन्न है। उत्पाद-व्यय, ध्रुव के ऊपर तिरते हैं। आहाहा! परमार्थ से जीव उत्पन्न भी नहीं होता, मरता भी नहीं है। व्यय नहीं होता। उसका व्यय नहीं होता। व्यय तो उत्पाद-व्यय है। और बंध-मोक्ष को करता नहीं। आहाहा! पर्याय है न? पर्याय पर दृष्टि नहीं है। पाठ है। जयसेनाचार्य की टीका, समयसार की।

यहाँ कहते हैं, कौन-सा बोल आया? ३०। बीज बोया तो विश्वास है कि बीज में से पत्ते, फूल, फल सब होगा। सब होगा ही। वहाँ शंका होती है? **जब बीज बोते हैं, तब प्रगटरूप से कुछ नहीं दिखता, तथापि विश्वास है कि 'इस बीज में से वृक्ष उगेगा, उसमें से डालें-पत्ते-फलादि आएँगे', पश्चात् उसका विचार नहीं आता;...** आहाहा! **उसी प्रकार...** वह तो दृष्टान्त हुआ। **मूल शक्तिरूप द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से...** आहाहा! ३०वाँ बोल। क्या कहा? देखो! **उसी प्रकार...** अर्थात् जैसे बीज बोया और विश्वास है कि वृक्ष होगा ही। **उसी प्रकार मूल शक्तिरूप द्रव्य...** मूल शक्तिरूप द्रव्य परमात्मा स्वयं। त्रिकाल निरावरण अखण्डानन्द प्रभु एकरूप जो त्रिकाल, पर्याय में अनेकरूप है, द्रव्य में एकरूप है, ओहोहो! ऐसे एक अखण्ड निरावरण परमपारिणामिक-भावलक्षण निजपरमात्मद्रव्य, वह मैं हूँ। धर्मी को यह मैं हूँ, ऐसा है। खण्ड ज्ञान का अनुभव नहीं है। आहाहा!

वह यहाँ कहते हैं, **द्रव्य को यथार्थ विश्वासपूर्वक ग्रहण करने से...** भगवान आत्मा द्रव्य पूर्णानन्द का नाथ ध्रुव, अचल, उसका आश्रय लिया.. आहा! उसे ग्रहण किया और निर्मल पर्याय प्रगट होती है। **द्रव्य में प्रगटरूप से कुछ दिखाई नहीं देता,...** पहले प्रतीत हुई अनुभव में, उसमें असंख्य प्रदेश या अनन्त गुण प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देते। क्या कहा? प्रगट पहले सम्यग्दर्शन में अनुभव होता है। आनन्द का स्वाद आता है, अतीन्द्रिय आनन्द का, परन्तु असंख्य प्रदेश दिखते नहीं। ज्ञान कम है और अस्थिर है। असंख्य प्रदेश आदि। कहते हैं, वह पहले दिखाई नहीं देते। **इसलिए विश्वास बिना 'क्या**

प्रगट होगा'... विश्वास। ओहो..! बीज में से वृक्ष होगा ही। वैसे मेरे आत्मा का बीज-सम्यग्दर्शन हुआ, उसमें से केवलज्ञान होगा ही। भवभ्रमण कभी नहीं रहेगा, ऐसा अन्दर में से विश्वास न आये तो उसने आत्मा को जाना नहीं। आहाहा! ऐसी बात सूक्ष्म है, पण्डितजी! अन्तर की बात है, भाई!

'क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है,... इसलिए विश्वास बिना 'क्या प्रगट होगा' ऐसा लगता है, परन्तु द्रव्यस्वभाव का विश्वास करने से... आहा..! द्रव्यस्वभाव आत्मा का विश्वास करने से **निर्मलता प्रगट होने लगती है।** निर्मलता प्रगट होने लगती ही है। आनन्द की शुद्ध बढ़ती ही है। द्रव्य का आश्रय हुआ, उसको द्रव्य के आश्रय से शुद्धि उत्पन्न हुई, द्रव्य के आश्रय से शुद्धि टिकी रही और द्रव्य के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि हुई। आहाहा! ऐसा मार्ग है। करना क्या? यह करना, यह करना... करना क्या है? करने में मरना है। ज्ञानस्वरूप को रागादि करना बताना, मर गया। आहाहा! क्या कहा? फिर से। ज्ञानस्वरूप भगवान जानन-देखनस्वभाव, उसको कुछ करना सौंपना, राग करना, पुण्य-पाप करना सौंपना, वहाँ ज्ञातापने का नाश होता है। समझ में आया? आहाहा!

ज्ञातापना, मैं ज्ञानस्वरूप का पिण्ड हूँ, मेरी चीज़ में कोई मैल-अशुद्धता कुछ नहीं है। ऐसी चीज़ का जब विश्वास हुआ, आहाहा! वह फलेगा ही। आहा..! द्रव्यस्वभाव का विश्वास करने से निर्मलता प्रगट होगी। प्रगट हुए बिना रहे नहीं। यह तो बहिन के वचन में, अनुभव के वचन हैं। आहाहा! रात्रि को थोड़ा बोले होंगे। बहिन आयी नहीं है, शरीर में कमजोरी है। बोलते हैं थोड़ा, लेकिन बहिनों ने लिख लिया था। इसलिए बाहर आया, नहीं तो बाहर नहीं आता। (उनकी स्थिति) शव जैसी है। आहा..! यह तो उनकी वाणी है। यह सब उनके वचनामृत है। लो, उतना रखो... (**श्रोता :-** प्रमाण वचन गुरुदेव!)